IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 9, Issue 12, December 2022

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.580

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

प्राचीन भारत में लोकधर्म

Dr. Seema Gupta

Associate Professor, History, Government Arts College, Kota, Rajasthan, India

सार

भारतीय संस्कृति में धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । वास्तव में यदि देखा जाये तो यह भारतीय संस्कृति का प्राण है । अति प्राचीन काल से धर्म को एक पवित्र प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया । भारत-भूमि अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों की क्रीड़ास्थली रही । धार्मिक सहिष्णुता का जो आदर्श हमें यहाँ देखने को मिलता है वह विश्व की किसी अन्य संस्कृति में दुर्लभ है । प्रत्येक धर्म ने भारतीय संस्कृति के निर्माण में अपना-अपना योगदान दिया है ।ब्राह्मण (वैदिक), बौद्ध तथा जैन प्राचीन काल के प्रमुख धर्म है ।**परिचय**

1. वैदिक धर्म (Vedic Religion):

प्राचीन भारतीयों के धर्म के विषय में सुनिश्चित ज्ञान सर्वप्रथम वैदिक साहित्य से प्राप्त होता है जिसमें वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक तथा उपनिषद् की गणना की जाती है । इस साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसमें हमें सर्वप्रथम बहूदेववाद के दर्शन होते है ।आर्य विभिन्न देवताओं के अस्तित्व में विश्वास करते थे । उनके अधिकांश देवता प्रकृति की विविध शक्तियों के प्रतीक है जिनका मानवीकरण किया गया है तथा यह माना गया है कि देवताओं की कृपा से ही संसार के कार्य-कलाप संचालित होते हैं । प्रत्येक देवता को संसार के स्रष्टा तथा नियन्ता के रूप में दर्शाया गया है ।[1,2]

मुख्यतः वैदिक देवताओं के तीन वर्ग हैं:

(i) द्यूस्थान (आकाश) के देवता- इनमें वरुण, पूषन्, मित्र, सूर्य, विष्णु, अश्विन्, उषा आदि, हैं ।

(ii) अंतरिक्ष के देवता- इनमें इन्द्र, अपाम्, पर्जन्य, आपः, रुद्र, मरुत आदि की गणना की गयी है ।

(iii) पृथिवी के देवता- इनमें अग्नि, बृहस्पति, सोम, इत्यादि सम्मिलित हैं ।

ऋग्वेद में उल्लिखित अधिकांश देवता पुरुष हैं तथा देवियों का स्थान गौण है । अदिति ही इस काल की महत्वपूर्ण देवी है । कुछ देवता अमूर्त भावनाओं के द्योतक हैं जैसे- श्रद्धा, मनु, धातृ, प्राण, काल आदि । देवताओं की उपासना यज्ञों द्वारा की जाती थी ।इस अवसर पर मन्त्रों द्वारा देवताओं का आवाहन किया जाता था । ऋग्वेद में विभिन्न देवताओं के प्रति कहे जाने वाले मन्त्रों का उल्लेख मिलता है । यज्ञों में अग्नि, घृत, अन्न, माँस आदि की आहुतियां दी जाती थीं ।[3,4] ऐसी मान्यता थी कि अग्नि द्वारा आहुति देवता सक पहुंचती है ।देवता स्वयं उपस्थित होकर आहुतियाँ ग्रहण करते हैं तथा मनोवांछित फल प्रदान करते हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का विस्तृत विवेचन मिलता है । प्रमुख यज्ञ थे-सोमयज्ञ, अग्नि होत्र, पुरुषमेध, पन्चमहायज्ञ, वाजपेय, राजसूय अश्वमेध आदि । ऋग्वेद में सोमयज्ञ का विस्तृत विवरण मिलता है । यह एक व्यापक यज्ञ था जिसमें तीन-तीन वेदियों, तीन-तीन अग्नियों तथा बहुसंख्यक पुजारियों के साथ-साथ चार प्रधान पुरोहित भाग लेते थे । स्पष्टतः इसमें बहुत अधिक धन व्यय होता होगा । अतः यह सामान्य जन की पहुँच के बाहर था ।[5,6]

अग्निहोत्र प्रातः एवं मध्याकाल में अग्नि की पूजा के साथ सम्पन्न होता था । पितृयज्ञ में पितरों की तुष्टि के लिये बलि दी जाती थी । सोमयज्ञ के अन्तर्गत ही पुरुषमेध आता था । इसमें ग्यारह या पच्चीस यूप बनते थे जिसमें मध्य पुरुष को आवक किया जाता था । यह पांच दिनों तक चलता था ।पन्चमहायज्ञ प्रत्येक गृहस्थ के लिये आवश्यक माना गया है । इसमें भूत यज्ञ, मनुष्य यज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा ब्रह्म यश सम्मिलित थे । 'राजसूय यज्ञ' अभिषिक्त शासक द्वारा सम्पन्न किया जाता था । ज्ञात होता है कि राजसूय यज्ञ के अवसर पर राजा रानियों के घर जाता था जो उसे राजपद की मान्यता प्रदान करते थे ।यह यज्ञ केवल राजन्य (क्षत्रिय) वर्ग के लोगों द्वारा किया जाता था । अश्वमेध, सोमयज्ञ का ही एक प्रकार था । सार्वभौम सत्ता के अभिलाषी सम्राट यह यज्ञ किया करते थे । इसमें अश्व की चील का विधान था ।वैदिक देवता सदाचार तथा नैतिक नियमों के संरक्षक है । उनका सम्बन्ध 'ऋत' से बताया गया है । 'ऋत' का अर्थ है सत्य तथा अविनाशी सत्ता । ऋग्वेद में ऋत की बड़ी सुन्दर कल्पना मिलती है । बताया गया है कि सृष्टि के आदि में सबसे पहले ऋत उत्पन्न हुआ था- "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोध्यजायत ।"इसी के द्वारा विश्व में सुव्यवस्था एवं प्रतिष्ठा स्थापित होती

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

है । ऋत विश्व की व्यवस्था का नियामक है । देवता ऋत के स्वरूप है अथवा कत से उत्पन्न हुए है तथा वे अपनी दैवी शक्तियों के द्वारा ऋत की रक्षा करते है । 'सोम ऋत के द्वारा उत्पन्न तथा वर्धित होते हैं, सूर्य ऋत का विस्तार करते हैं तथा नदियाँ इसी कत का वहन करती हैं ।'[7,8]

इस प्रकार ऋत से तात्पर्य विश्वव्यापी भौतिक एवं नैतिक व्यवस्था से है । डॉ॰ राधाकृष्णन् ने तो ऋत को सदाचार के मार्ग तथा बुराइयों से रहित यथार्थ पथ के रूप में निरूपित किया है । वैदिक ऋषियों ने देवताओं की कल्पना मनुष्यों के रूप में की तथा उनमें सभी मानवीय गुणों को आरोपित कर दिया । देवता तथा मनुष्य में अन्तर यह था कि देवता अमर तथा सर्वव्यापी थे ।उनमें मानवोचित दुर्बलतायें भी नहीं थीं । वे अपार शक्ति तथा नैतिकता से युक्त होते थे । इसके विपरीत मनुष्य मर्त्य एवं सीमित साधनों वाला था । वह देवता की कृपा का अभिलाषी रहता था तथा मनुष्य का उत्थान उसकी कृपा द्वारा ही सम्भव था । देवताओं के कोप से उसका सर्वनाश हो सकता है । अतः मनुष्य उन्हें प्रसन्न करने के लिये सतत् प्रयत्नशील रहता था ।वैदिक धर्म की एक विशिष्टता यह है कि इसमें जिस देवता की स्तुति की गयी है उसी को सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि मान लिया गया है । कभी वरुण तथा कभी इन्द्र को सर्वोपरि मानकर अन्य देवताओं की उत्पत्ति उनसे मानी गयी है । मैक्समूलर ने इस प्रवृति को 'हेनोथीज्म' अथवा 'कैथेनोथीज्म' की संज्ञा प्रदान की है ।

वैदिक साहित्य के अनुशीलन से पता लगता है कि ऋषियों ने देवताओं की बहुलता से घबड़ाकर यह खोज करना प्रारम्भ किया कि सर्वशक्तिमान् एवं सर्वश्रेष्ठ देवता कौन है? यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि 'किस देवता के लिये हवि का विधान किया जाय? । देवताओं की संख्या कम करने के लिये कुछ को मिलाकर एक ही श्रेणी में कर दिया गया ।पृथ्वी तथा आकाश को मिलाकर 'द्यावापृथिवी' नाम दिया गया । मित्र-वरुण, उषा-रात्रि को संयुक्त किया गया । मरुतों, अश्विनों तथा आदित्यों की भी एक ही श्रेणी मानी गयी । इस प्रकार देवताओं की संख्या में कमी आई । किन्तु ऋषियों को इतने से ही संतोष नहीं हुआ क्योंकि वे तो सर्वोच्च देवता की खोज करना चाहते थे ।अपने चिन्तन के अन्तिम चरण में उन्होंने यह महत्वपूर्ण तथ्य खोज निकाला कि परम तत्व (सत्) एक ही है जिसे ज्ञानी लोग अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि विभिन्न नामों से जानते है- 'एकं सत् विधा बहुधा वदन्ति ।[9,10] अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु ।'इसी परम तत्व को हिरण्यगर्भ, प्रजापति, विश्वकर्मा आदि के नाम से वर्णित किया गया है । यह 'एकेश्वरवाद' की अनुभूति है । इस प्रकार ऋग्वैदिक धर्म साधारण बहुदेववाद से प्रारम्भ होकर एकेश्वरवाद के रूप में बदल गया । एकेश्वरवाद की विस्तृत व्याख्या वाद के दर्शन में मिलती है ।

ऋग्वेद में परमतत्व सम्बन्धी विचार दो रूपों में प्राप्त होते हैं:
(a) सर्वेश्वरवाद:
इसका विवेचन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में मिलता है जिसमें कहा गया है कि सृष्टि के आदि में एक ही परमतत्व था । उसी से सृष्टि की उत्पत्ति हुई । वही पूर्णरूपेण सृष्टि में व्याप्त है ।[11,12]

(b) एकत्ववाद:
इसका विवेचन पुरुष सूक्त में हुआ है जहाँ बताया गया कि सृष्टि का मूल तत्व विराट् पुरुष है । वह विश्व में व्याप्त होते हुये भी उससे कुछ अंशों में परे हैं । ऋग्वेदिक धम का उद्देश्य मुख्यतः लौकिक सुखों को प्राप्त करना था ।देवताओं की उपासना युद्ध में विजय, अच्छी खेती, सन्तान की प्राप्ति आदि के लिये जाती थी । यज्ञों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति में भी आयी का विश्वास था । उनके विचार पूर्णतया आशावादी थे । वे जीवन के सुखों का पूरा-पूरा उपभोग करना चाहते थे ।तपस्या, कायाक्लेश आदि में उनका विश्वास नहीं था । प्रारम्भ में यज्ञों का विधान अत्यन्त सरल था किन्तु बाद में चलकर यह जटिल एवं विस्तृत हो गया । कुछ यज्ञ अत्यन्त विस्तृत एवं व्ययसाध्य होते थे । उपनिषद् काल में यज्ञों का महत्व घट गया तथा कर्मकाण्ड के स्थान पर ज्ञान की प्रतिष्ठा की गयी ।तप, त्याग, संन्यास आदि पर बल दिया जाने लगा । मोक्ष के लिए कयाक्लेश तथा सन्यास को आवश्यक समाज गया । उपनिषदों की प्रमुख शिक्षा व्यक्ति के सारभूत तत्व आत्मा का जगत् के सारभूत तत्व ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करना है ।

विचार-विमर्श

2. वैष्णव (भागवत) धर्म (Vaishnava (Bhagwat) Religion):
उत्पत्ति तथा विकास:
वैष्णव धर्म का विकास भागवत धर्म से हुआ । परम्परा के अनुसार इसके प्रवर्त्तक वृष्णि (सात्वत) वंशी कृष्ण थे जिन्हें वसुदेव का पुत्र होने के कारण वासु-देव कृष्ण कहा जाता है । वे मूलतः मथुरा के निवासी थे । छान्दोग्य उपनिषद् में उन्हें देवकी-पुत्र कहा गया है तथा चोर अंगिरस का शिष्य बताया गया है । कृष्ण के अनुयायी उन्हें 'भगवत्' (पूज्य) कहते थे ।इस कारण उनके द्वारा प्रवर्त्तित धर्म

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

की संज्ञा भागवत हो गयी । महाभारत काल में वासुदेव कृष्ण का समीकरण विष्णु से किया गया तथा भागवत धर्म वैष्णव धर्म वन गया । विष्णु एक ऋग्वेदिक देवता है तथा अन्य देवताओं के समान प्रकृति के देवता है । वे सूर्य के क्रियाशील रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं ।विष्णु का सर्वाधिक महत्व इस कारण है कि उन्होंने तीन पगों से सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप डाला है । उन्हें 'उरुगाय' (महान् गतिवाला) तथा 'उरुक्रम' (विस्तृप पाद प्रक्षेपों वाला) बताया गया है । उनकी स्तुति में कहा गया है कि जहाँ पर देवताओं की कामना करने वाले लोग हर्षित होते है, वही स्थान विष्णु का प्रिय है । वहीं अमृत का उत्स (श्रोत) है ।बाद की संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में विष्णु के प्रभाव में वृद्धि पाते हैं । शतपथ ब्राह्मण में उन्हें यज्ञ का प्रतिरूप माना गया है तथा बताया गया है कि देवताओं के युद्ध में व सर्वशक्तिशाली सिद्ध हुए तथा सर्वाधिक प्रसिद्ध घोषित किये गये ।ऐतरेय ब्राह्मण में भी विष्णु को 'सर्वोच्च देवता' बताया गया है ।[13,14] महाभारत में विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता के रूप में प्रतिष्ठित पाते हैं । वस्तुतः समस्त महाभारत ही विष्णु से व्याप्त है । इसमें विष्णु के विभिन्न अवतारों का उल्लेख मिलता है जिनमें से एक अवतार कृष्ण वासुदेव हैं ।इस समय से भागवत धर्म वैष्णव धर्म बन जाता है तथा विष्णु उसके अधिष्ठाता देवता हो जाते हैं । पतंजलि ने भी वासुदेव को विष्णु का रूप बताया है । विष्णु पुराण में वासुदेव को विष्णु का एक नाम बताते हुए कहा गया है कि 'विष्णु सर्वत्र हैं, उनमें वासुदेव हैं ।'इस प्रकार देखते हैं कि प्राचीन भागवत धर्म ही कालान्तर में वैष्णव धर्म में प्रकार जब कृष्ण-विष्णु का तादात्म्य से स्थापित हुआ तब वैष्णव धर्म की एक संज्ञा 'पान्चरात्र धर्म' हो गयी क्योंकि नारायण के उपासक पान्चरात्र कहे जाते थे । जहाँ तक 'नारायण' का प्रश्न है, सर्वप्रथम उनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में ही पाते हैं ।शतपथ ब्राह्मण में उन्हें 'परमपुरुष' बताया गया है जिसमें सभी लोक, वेद, देवता तथा प्राण प्रतिष्ठित है । सभी का अतिक्रमण करने के लिए उन्होंने पान्चरात्र यश किया तथा सर्वोच्च एवं सर्वव्यापी वन गये । महाभारत के शान्तिपर्व में नारायण का तादात्म्य वासुदेव विष्णु के साथ स्थापित करते हुए उन्हें सर्वव्यापी एवं सभी को उत्पन्न करने वाला बताया गया है ।

वासुदेव अथवा भागवत धर्म की प्राचीनता ईसा-पूर्व पाँचवीं शती तक जाती है । महर्षि पाणिनि ने भागवत धर्म तथा वासुदेव की पूजा का उल्लेख किया है । उन्होंने वासुदेव के उपासकों को 'वासुदेवक' कहा है । प्रारम्भ में मथुरा तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में यह धर्म प्रचलित था ।यूनानी राजदूत मेगस्थनीज शूरसेन (मथुरा) के लोगों को 'हेराक्लीज' का उपासक बताता है जिससे तात्पर्य वासुदेव कृष्ण से ही हैं । सिकन्दर के समकालीन यूनानी लेखक बताते है कि पोरस की सेना अपने समक्ष हेराखीज की मूर्ति रखकर युद्ध करती थी । भागवत धर्म में कृष्ण को सर्वोच्च देवता मानकर उनकी भक्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति का विधान प्रस्तुत किया गया था ।महावीर तथा बुद्ध की ही भाँति वासुदेव कृष्ण को भी अब ऐतिहासिक व्यक्ति माना जा चुका है । वे वृष्णि कबीले के प्रमुख थे ।[15,16]ईस्वी सन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही उनकी देवता के रूप में पूजा प्रारम्भ हो चुकी थी । गीता में स्वयं कृष्ण ने अपने को वृष्णियों में वासुदेव कहा है ।मथुरा से भागवत धर्म धीरे-धीरे भारत के अन्य भागों में फैलने लगा । लगता है पहले इसका प्रचार उत्तर, पश्चिम तथा दक्षिण की ओर हुआ और पूर्वी भारत में यह धर्म बहुत वाद में आया । अशोक के लेखों में इस धर्म का उल्लेख नहीं मिलता । मौर्यकाल के पश्चात् यह धर्म मध्य भारत में अत्यधिक लोकप्रिय हो गया ।शुंगों के काल में इस धर्म का विकास हुआ तथा विदेशी भी इसे ग्रहण करने लगे । इसे लोकप्रिय बनाने में यवनों का विशेष योगदान रहा । पुरातात्विक प्रमाणां से भी इस धर्म के लोकप्रियता की सूचना मिलती है । भागवत धर्म से सम्बन्धित प्रथम प्रस्तर स्मारक विटिशा वैसनगर का गरुड़ स्तम्भ है ।इसमें पता चलता है कि तक्षशिला के यवन राजदूत हेलियोडोरस ने भागवत धर्म ग्रहण किया तथा इस स्तम्भ की स्थापना करवाकर उसकी पूजा की थी । इस पर उत्कीर्ण लेख में हेलियोडोरस को 'भागवत' तथा वासुदेव को 'देवदेवस' अर्थात् देवताओं का देवता कहा गया है । अपोलोडोटस के सिक्कों पर सबसे पहले भागवत धर्म के चिन्ह मिलते है । उत्तर-पश्चिम से मध्य देश तक जहाँ-जहाँ यवन गये, यह सम्प्रदाय भी फैला । ईसा पूर्व दूसरी शती तक समाज में वासुदेव को सर्वोच्च देवता मानकर उनकी उपासना की जाने लगी थी ।गीता में कृष्ण कहते है कि 'बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में शान प्राप्त व्यक्ति अब कुछ वासुदेव ही है' इस प्रकार मेर को भजता है, वह महात्मा अति दुर्लभ है ।' वेसनगर से ही प्राप्त एक अन्य लेख में भागवत की उपासना में मन्दिर तथा गरुड़ध्वज बनवाये जाने का वर्णन मिलता है ।

राजस्थान के घोसडी से प्राप्त लेख में रक्त अनुयायी द्वारा भागवत की पूजा के निमित्त 'शिला प्राकार' बनवाये जाने का उल्लेख मिलता हैं । यह लेख ईसा पूर्व प्रथम शती का है । इससे सूचित होता है कि इस समय तक राजस्थान में भागवत धर्म लोकप्रिय हो चुका था । इसी समय का एक लेख महाराष्ट्र के नानाघाट से मिलता है जिसमें सकर्षण (बलराम) तथा वासुदेव की पूजा का उल्लेख है ।इससे निष्कर्ष निकलता है कि महाराष्ट्र में भी भागवत धर्म का प्रचार हो चुका था । कुषाण काल में भी यह धर्म भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित हुआ । हुविष्क तथा वासुदेव जैसे शासक वैष्णव मतानुयायी थे । इसी समय में भारत में मूर्ति पूजा का प्रचलन हुआ और यह भागवत धर्म (वैष्णव धर्म) का अभिज्ञ अंग वन गयी, यद्यपि इसके पूर्व इसके मूर्ति पूजा के साहित्यिक उल्लेख छिट-पुट रूप में मिलते है ।भागवत अथवा वैष्णव धर्म का चरमोत्कर्ष गुप्त राजाओं के शासन-काल (319-550 ई°) में हुआ । गुप्त नरेश वैष्णव मतानुयायी थे तथा उन्होंने इसे राजधर्म बनाया था । अधिकांश शासक 'परम भागवत' की उपाधि ग्रहण करते थे । विष्णु का ताहन गरुड़ गुप्तों का राजचिह्न था ।प्रयाग लेख से सूचित होता है कि गुप्त शासनपत्रों के ऊपर गरुड़ की मुद्रा लगी होती थी (गरुत्मंदक शासन) । विद्या की उपासना में अनेक मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया गया । मेहरौली लेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

द्वितीय ने विष्णुपद पर्वत पर विष्णुध्वज की स्थापना करवायी थी (प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवातो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः) ।स्कन्दगुप्त कालीन भितरी (गाजीपुर) लेख में विष्णु की मूर्ति स्थापित किये जाने का वर्णन है ।[17] जूनागढ़ लेख से भी ज्ञात होता कि चक्रपालित ने सुदर्शन झील के तट पर विष्णु की मूर्ति स्थापित कारवायी थी । तिगवां (जबलपुर, म° प्र°), देवगढ (झाँसी), मथुरा आदि से इस काल के बने हुये मन्दिर तथा मूर्तियों के देवगढ़ की मूर्ति में विष्णु को शेषशय्या पर विश्राम करते हुए दिखाया गया है ।गुप्तकाल में लिखे गये पुराणों में बिष्णु के अवतारों का विस्तृत वर्णन मिलता है । इस युग के कोशकार अमरसिंह ने अपने ग्रन्थ में विष्णु के 39 नाम गिनाते हुए उन्हें वसुदेव का पुत्र बताया है । गुप्तकाल के वाद भी वैष्णव धर्म का उत्थान होता रहा । हर्षकाल में भी यह एक प्रमुख धर्म था । हर्षचरित में पान्चरात्र तथा भागवत सम्प्रदायों का उल्लेख मिलता है । राजपूत काल में तो वैष्णव धर्म का अत्यधिक उत्कर्ष हुआ ।विभिन्न लेखों में 'ओम् नमो भगवते वासुदेवाय' कहकर विष्णु के प्रति श्रद्धा प्रकट की गयी है । विभिन्न शासकों ने विष्णु के सम्मान में मन्दिर तथा मूर्तियों का निर्माण करवाया था । चन्देल राजाओं ने खुजराहों में विष्णु के कई मन्दिर वनवाये थे ।चेदि, परमार, पाल तथा सेन राजाओं के शासन में भी विष्णु के कई मन्दिर तथा मूर्तियों का निर्माण करवाया गया था । इस काल की विष्णु मूर्तियों चतुर्भुजी हैं तथा उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म है । साथ ही साथ लक्ष्मी और गरुड की मूर्तियाँ भी निर्मित करवायी गयी थीं ।विष्णु के दस अवतारों की कथा का व्यापक प्रचलन हुआ तथा प्रत्येक की मूर्तियों का निर्माण हुआ । समाज में वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक व्रतों एवं अनुष्ठानों का भी प्रचलन हो गया । उत्तरी भारत के ही समान दक्षिणी भारत में भी वैष्णव धर्म का प्रचार हुआ । संगम साहित्य से पता लगता है कि ईसा की प्रथम शती में यह तमिल प्रदेश का एक महत्वपूर्ण धर्म था । दक्षिण भारत में विष्णु के कई मन्दिर तथा मूतियाँ मिलती हैं ।[18,19]

वेंगी के पूर्वी चालुक्य शासक वैष्णव मतानुयायी थे तथा उनका राजचिह्न गुप्तों के समान ही 'गरुड' था । उनके लेखों में वाराह की उपासना मिलती है । राष्ट्रकूट काल में भी दक्षिणापथ में वैष्णव धर्म का विकास हुआ, यद्यपि राष्ट्रकूट नरेश जैनमत के पोषक थे । दन्तिदुर्ग ने एलौरा में दशावतार का प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था जिसमें विष्णु के दस अवतारों की कथा मूर्तियों में अंकित है ।तमिल प्रदेश में वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार आलवार सन्तों द्वारा किया गया । 'आलवार' शब्द का अर्थ 'ज्ञानी व्यक्ति' होता है । आलवार सन्तों की संख्या वारह बताई गयी है जिनमें तिरुमगई, पेरिय अलवर, आण्डाल, नाम्मालवार आदि नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इनका आविर्भाव सातवीं से नवीं शताब्दी के मध्य हुआ ।प्रारम्भिक आलवर सन्तों में पीयगई, पूडम तथा पेय के नाम मिलते हैं जो क्रमशः कांची, मल्लई तथा मयलापुरम् के निवासी थे । इन्होंने सीधे तथा सरल ढंग से भक्ति का उपदेश दिया । इनके विचार संकीर्णता अथवा साम्प्रदायिक तनाव से रहित थे । इनके पश्चात् तिरुमलिशई का नाम मिलता है जो संभवतः पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन् प्रथम के समय में हुआ ।तिरुमंगई अत्यन्त प्रसिद्ध आलवर सन्त हुआ । अपनी भक्तिगीतों के माध्यम से जैन तथा बौद्ध धर्मों पर आक्रमण करते हुए उसने वैष्णव धर्म का जोरदार प्रचार किया । कहा जाता है कि श्रीरगम् के मठ की मरम्मत के लिये उसने नेगपट्टम के बौद्ध विहार से एक स्वर्ण मूर्ति चुरायी थी । शैवों के प्रति उसका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत उदार था ।आलवरों में एकमात्र महिला साध्वी आण्डाल का नाम मिलता है जिसके भक्तिगीतों में कृष्ण-कथायें अधिक मिलती हैं । मध्ययुगीन कवयित्री मीरावाई की कृष्ण भक्ति के समान आण्डाल भी कृष्ण की प्रेम दीवानी थी । आलवर सन्तों की अन्तिम कड़ी के रूप के नाम्मालवार तथा उसके प्रिय शिष्य मधुर कवि के नाम उल्लेखनीय है ।नाम्मालवार का जन्म तिनेवेली जिले के एक वेल्लाल कुल में हुआ था । उसने वडी संख्या में भक्तिगीत लिखे । उसके गीतों में गम्भीर दार्शानक चिन्तन देखने को मिलता है । विष्णु को अनन्त एवं सर्वव्यापी मानते हुए उसने बताया कि उसकी प्राप्ति एक मात्र भक्ति से ही संभव है ।[20,21]

परिणाम

विष्णु की स्तुति में लिखा गया उसका एक पद उल्लेखनीय है:
तू अभी इतना दयालू नहीं हुआ कि तू अपनी

करुणा अपनी प्रेयसी (गायिका) को दे सके ।

तेरी उपेक्षा से निराश वह अपना शरीर त्याग दे

उससे पूर्व ही तू इतनी दया तो कर

कि अपने संदेशवाहक तथा वाहन गरुड़ के द्वारा

उस प्रेमिका को संदेश भेज दे, हे दया के सागर,

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

कि वह बलात न हो और कुछ हिम्मत से काम ले, जब तक

तू मेरे स्वामी, लौटकर आए प्रत्याशित

निश्चय ही शीघ्र आएगा तू ।

नाम्मालवार के शिष्य मधुर कवि ने अपने गीतों के माध्यम से गुरु महिमा का बाखँ किया । आलवर संतों ने ईश्वर के प्रति अपनी उत्कट भक्ति-भावना के कारण समस्त संसार ईश्वर का शरीर है तथा वास्तविक आनंद उसकी सेवा करने में ही है । आलवर की तुलना उस विरहिणी युवती के साथ की गयी है जो अपने प्रियतम के विरह वेदना में अपने प्राण खो देती है ।इस प्रकार आलवर सच्चे विष्णुभक्त थे । इन्होंने भजन-कीर्तन, नामोच्चारण, मूर्ति दर्शन आदि के माध्यम से वैष्णव धर्म का प्रचार किया । इनके उपदेशों में दार्शनिक जटिलता नहीं थी । उन्होंने एकमात्र विष्णु को ही आराध्य देव बताया जो प्राणियों के कल्याण के निमित्त समय-समय पर अवतार लेते हैं । उनका कहना था कि मोक्ष के लिये ज्ञान नहीं अपितु विष्णु की भक्ति आवश्यक है ।वेदों को न जानने वाला व्यक्ति भी यदि विष्णु के नाम का कीर्तन करे तो वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है । आलवर सन्तों तथा आचार्यों के प्रभाव में आकर कई पल्लव राजाओं ने वैष्णव धर्म को ग्रहण कर उसे राजधर्म बार तथा विष्णु के सम्मान में मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण करवाया । सिंहविष्णु ने मामल्लपुरम् में आदिवाराह मंदिर का निर्माण करवाया था ।नरसिंहवर्मा द्वितीय के समय में कान्ची में वैकुंठ पेरुमाल मन्दिर का निर्माण करवाया गया था । दन्तिवर्मा भी विष्णु महान् उपासक था । लेखों में उसे विष्णु का अवतार बताया गया है । वादामी के चालुक्य नरेश भी वैष्णव मत के पोषक तथा कुछ ने 'परमभागवत' की उपाधि ग्रहण की थी । ऐहोल में विष्णु के कई मन्दिर का निर्माण किया गया था ।[22,23]

चोल राजाओं के समय में शैव धर्म के साथ-साथ वैष्णव धर्म की भी प्रगति हुई । इस काल में वैष्णव धर्म के प्रचार का कार्य आलवारों के स्थान पर आचार्यों ने किया । उन्होंने आलवरों की वैयक्तिक भक्ति को दार्शनिक आधार प्रदान किया तथा भक्ति का समन्वय कर्म और गान के साथ स्थापित करने का प्रयास किया ।आचार्य तमिल तथा संस्कृत दोनों भाषाओं के विद्वान् थे । अतः उन्होंने दोनों ही भाषाओं में वैष्णव सिद्धान्तों का प्रचार किया । आचार्य परम्परा में सबसे पहला नाम नाथमुनि का लिया जाता है । उन्हें अन्तिम आलवर मधुरकवि का शिष्य बताया जाता है । उन्होंने आलवरों भक्तिगीतों को व्यवस्थित किया । 'न्यायतत्व' की रचना का श्रेय उन्हें दिया जाता है ।इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रेममार्ग दार्शनिक औचित्य का प्रतिपादन किया । परम्परा के अनुसार नाथमुनि श्रीरंगम् मन्दिर की मूर्ति में प्रवेश कर ईश्वर में समाहित हो गये थे । दूसरे महान् आचार्य आलवंदार हुए जिनका एक अन्य नाम यामुनाचार्य भी मिलता है ।आगमों महत्ता का प्रतिपादित करते हुए उन्होंने उन्हें वेदों के समकक्ष बताया । अपने गीतों के माध्यम से प्रपत्ति के सिद्धान्त उन्होंने अत्यन्त सुन्दर ढंग से अपने शिष्यों के समक्ष प्रस्तुत किया । आचार्य परम्परा में रामानुज का नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय है । उनका समय 1016-1137 ई॰ सामान्यतः माना हैं । उसका जन्म कांची के पास श्रीपेरुम्बुदूर नामक स्थान में हुआ था । कांची में यादवप्रकाश से उन्होंने वेदान्त शिक्षा ली थी ।कुछ समय वाद उनका यादव प्रकाश से कुछ औपनिषदिक सूत्रों की व्याख्या के प्रश्न पर मतभेद हो तथा उन्होंने वेष्णव आचार्य यामुनाचार्य की शिष्यता ग्रहण कर ली । यामुनाचार्य की मृत्यु के वाद रामानुज उनके संप्रदाय के आचार्य बने । उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा जिसे 'श्रीभाष्य' कहा जाता है । उनका मत 'विशिष्टाद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है ।रामानुज सगुण ईश्वर में विश्वास करते थे । श्रीरंगम् (त्रिचनापल्ली) के मठ में रहते हुए उन्होंने वैष्णव धर्म के प्रचार-पसार के लिये महान् कार्य किये । उनके प्रयासों के फलस्वरूप यह धर्म समाज में व्यापक रूप से प्रचलित हो गया । संभव है इसका प्रभाव चोलों के कुल धर्म शैव पर पड़ा हो तथा इसी से क्षुब्ध होकर किसी कट्टर शैव चोल शासक ने उन्हें उत्पीड़ित किया हो ।किन्तु इस चोल राजा की पहचान निश्चित नहीं है । सामान्यतः चोल काल शैवों राधा वैष्णवों के परस्पर सदभाव एवं सम्मिलन का काल रहा तथा रामानुज की कथा अपवादस्वरूप थी । डरा समय शिव के समान विष्णु के सम्मान में भी मन्दिर बनवाये गये तथा मठों की स्थापना की गयी । मन्दिर तथा मठ चलियुगीन धार्मिक जीवन के केंद्र बिन्दु थे । [24]कई सन्त कवियों ने विष्णु की उपासना में तमिलभाषा में मन्त्रों की रचना की थी ।

चतुर्व्यूह:
भागवत अथवा पान्चरात्र धर्म में वासुदेव विष्णु (कुष्ण) की उपासना के साथ ही साथ तीन अन्य व्यक्तियों की भी उपासना की जाती थी ।

इसके नाम इस प्रकार हैं:
(1) संकर्षण (बलराम) – ये वसुदेव के रोहिणी से उत्पन्न पुत्र थे ।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

(2) प्रद्युमन – ये कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र थे ।

(3) अनिरुद्ध – ये प्रद्युम्न के पुत्र थे ।

उपर्युक्त चारों को चतुर्व्यूह संज्ञा दी जाती है । वासुदेव के समान इनकी भी मूर्तियां बनाकर भागवत मतानुयायी पुजा किया करते थे । महाभारत के नारायणीय खण्ड में इनका विस्तृत विवरण प्राप्त होता है । वायुपूराण में इन चारों के साथ साम्ब (कृष्ण के जाम्बवन्ती से उत्पन्न पुत्र) को मिलाकर इन्हें 'पञ्चवीर' कहा गया है ।[25]

ऐसा प्रतीत होता है कि चतुर्व्यूह की कल्पना ईसा पूर्व दूसरी शती के पहले की है । इसका प्राचीनतम उल्लेख ब्रह्मसूत्रों में मिलता है । मथुरा के समीप मोरा से प्राप्त प्रथम शती के एक लेख से पता चलता है कि तोषा नामक महिला ने वासुदेव के साथ-साथ उक्त चार व्यक्तियों की मूर्तियों को एक मन्दिर में स्थापित करवाया था ।सभी के पूर्व 'भागवत्' विशेषण विशेषण का ही प्रयोग मिलता है । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में पन्चवीरों की प्रतिमायें बनाने के नियम दिये गये हैं । अर्थशास्त्र में भी संकर्षण के उपासकों का उल्लेख मिलता है । लगता है कि कृष्ण के समान अन्य चारों ने भी नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया तथा धर्माचार्य के रूप के प्रतिष्ठित हुए ।बाद में उनमें देवत्व का आरोपण कर दिया गया । वासुदेव कृष्ण को परमतत्व मानकर अन्य चारों को उन्हीं का अंश स्वीकार किया गया । संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न को क्रमशः जीव, अहंकार तथा मन (बुद्धि) का प्रतिरूप माना गया है ।

वैष्णव धर्म के सिद्धान्त:

वैष्णव धर्म में ईश्वरभक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने पर बल दिया गया है । भक्ति के द्वारा ईश्वर प्रसन्न होता है तथा वह भक्त को अपनी शरण में ले लेता है । वैष्णव सिद्धान्तों का गीता में सर्वोत्तम विवेचन मिलता है । इसमें गान, कर्म तथा भक्ति का समन्वय स्थापित करते हुए भक्ति द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का प्रतिपादन मिलता है ।स्वयं भगवान कृष्ण कहते है कि "सभी धर्मों को छोडकर एकमात्र मेरी शरण में आओ, मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त करुँगा ।" वैष्णव धर्म में अवतारवाद का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है । तदनुसार ईश्वर समय-समय पर अपने भक्तों के उद्धार के लिये पृथ्वी पर अवतरित होता है । गीता में कृष्ण कहते है- 'जब-जब धर्म की हानि तथा अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब अवतरित होता है । साधुओं की रक्षा तथा दुर्जनों के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिये युग-युग में मैं उत्पन्न होता हूँ ।'अन्यत्र वर्णित है कि मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे में लगे हुए जो भक्त जन अतिशय श्रद्धापूर्वक मुझे भजते है वे योगियों में अत्युत्तम योगी है । जो सम्पूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण बार के मुझे हो अनन्य भाव से भजते हैं उनको मैं शीघ्र ही मृत्युरूपी संसार सागर से उद्धार कर देता हूँ ।

पुराणों में विष्णु के दस अवतारों का विवरण प्राप्त होता है जो इस प्रकार हैं:

a. मत्स्य:

कथा के अनुसार जब पृथ्वी महान् जल-प्लावन से भयभीत हो गयी तब विष्णु ने मक्य के रूप में अवतार लेकर मनु, उनके परिवार तथा सात ऋषियों को एक जलपोत में बैठाकर, जिसकी रस्सी मत्स्य की सींग से बंधी हुई थी, रक्षा की । उन्होंने प्रलय से वेंदो की भी रक्षा की थी ।[26]

b. कूर्म अथवा कच्छप:

जल प्लावन के समय अमृत तथा रत्न आदि समस्त बहुमूल्य पदार्थ समुद्र में विलीन हो गये । विष्णु ने अपने को एक बड़े कूर्म (कच्छप) के रूप में अवतरित किया तथा समुद्रतल में प्रवेश कर गये । देवताओं ने उनकी पीठ पर मन्दराचल पर्वत रखा तथा नागवासुकि को डोरी बनाकर समुद्र मन्थन किया । परिणामस्वरूप अमृत तथा लक्ष्मी समेत चौदह रत्नों की प्राप्ति हुई ।

c. वराह:

हिरण्याक्ष नामक राक्षस ने एक वार पृथ्वी को विश्व सिन्धु के तल में ले जाकर छिपा दिया । पूथ्वी की रक्षा के लिये विष्णु ने एक विशाल वराह (सूकर) का रूप धारण किया । उन्होंने राक्षस का वध किया तथा पृथ्वी को अपने दांतों से उठाकर यथास्थान स्थापित कर दिया ।

d. नृसिंह:

प्राचीन समय में हिरण्यकश्यप नामक महान् असुर हुआ । ब्रह्मा से उसने यह वरदान प्राप्त किया कि वह न तो दिन में मरे न रात में, न उसे देवता मार सकें न मनुष्य । अब उसने देवताओं तथा मनुष्यों पर अत्याचार करना प्रारम्भ किया । यहाँ तक कि उसने अपने

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

पुत्र प्रहलाद को भी अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया। प्रहलाद की पुकार पर विष्णु ने नृसिंह (आधा मनुष्य तथा आधा सिंह) अवतार लिया। हिरण्यकश्यप को गोधूलि के समय मार डाला तथा प्रहलाद को राजा बनाया।

e. वामन:
बलि नामक राक्षस हुआ जिसने संसार पर अधिकार करने के वाद तपस्या करना प्रारम्भ किया। उसकी शक्ति इतनी बड़ी कि देवता धवड़ा गये तथा विष्णु से प्रार्थना की। फलस्वरूप वे एक बौने का रूप धारण कर राक्षस के सम्मुख उपस्थित हुए। उन्होंने दान में तीन पग भूमि मांगी।बलि ने यह स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् उनका आकार अत्यन्त विशाल हो गया तथा दो ही पग में पृथ्वी, आकाश तथा अन्तरिक्ष को नाप दिया। तीसरा पग नहीं उठाया तथा वलि के लिये पाताल छोड़ दिया। अतः वह पृथ्वी छोड़कर पाताल लोक चला गया।

f. परशुराम:
यमदग्नि नामक बाह्मण के पुत्र के रूप में विष्णु ने परशुरामावतार लिया। एक बार यमदग्नि को कीर्त्तवीर्य नामक राजा ने लूटा। परशुराम ने उसे मार डाला। कीर्त्तवीर्य के पुत्रों ने यमदग्नि को मार डाला। परशुराम अत्यन्त कुद्ध हुये और उन्होंने समस्त क्षत्रिय राजाओं का विनाश कर डाला। ऐसा इक्कीस बार किया गया। अन्ततः रामावतार में उनका गर्व चूर्ण हुआ और वे वन में तपस्या हेतु चले गये।

g. रामावतार:
अयोध्या में राजा दशरथ के पुत्र के रूप में विष्णु ने अवतार लिया तथा 'राम' नाम से विख्यात हुए। उन्होंने रावण सहित कई राक्षसों का संहार किया। विष्णु का यह अवतार उत्तर भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय है।

h. कृष्ण:
मथुरा के राजा कंस के अत्याचारों से प्रजा की रक्षा करने के लिये तथा देवकी के पुत्र रूप में विष्णु का कृष्णावतार हुआ। कृष्ण भी राम के ही समान लोकप्रिय है। उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाये, लीलायें कीं तथा कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि का बध किया। महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का साथ देकर दुर्योधन का वध करवाया तथा पृथ्वी पर सत्य, न्याय एवं धर्म को प्रतिष्ठित किया। राम तथा कृष्ण आज भी करोड़ों हिन्दुओं के आराध्य देव है। विदेशों में भी उनकी पूजा की जाती है।[21]

i. बुद्ध:
इन्हें विष्णु का अन्तिम अवतार माना गया है। जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' से सूचित होता है कि पशुओं के प्रति दया दिखाने तथा रक्तरंजित पशुथलि जैसी प्रथाओं को रोकने के उद्देश्य से विष्णु ने बुद्ध के रूप में अवतार ग्रहण किया। कालान्तर में हिन्दुओं ने अपनी उपासना पद्धति में बुद्ध को देवता के रूप में मान्यता प्रदान कर दी। विष्णु का यह अवतार अभी वर्तमान है।

j. कल्कि (कलि):
यह भविष्य में होने वाला है। कल्पना की गयी है कि कलियुग के अन्त में विष्णु हाथ में तलवार लेकर श्वेत अश्व पर सवार हो पृथ्वी पर अवतरित होंगे। वे दृष्टों का संहार करेंगे तथा पृथ्वी पर पुन स्वर्ग युग स्थापित होगा।

वैष्णव धर्म में मूर्ति पूजा तथा मन्दिरों आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। मूर्ति को ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप माना जाता है। भक्त मन्दिर में जाकर उसकी पूजा करते हैं। दशहरा, जन्माष्टमी जैसे पर्व वासुदेव-विष्णु के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के प्रतीक है। वैष्णव उपासक भगवान का कीर्तन करते है तथा पवित्र तीर्थों पर एकत्रित होकर स्थान-ध्यान करते हैं।वैष्णव धर्म के प्रमुख आचार्यों में रामानुज, मध्य, वल्लभ, चैतन्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने इस धर्म का अधिका-धिक प्रचार किया। बाद में चलकर विष्णु का रामावतार सबसे अधिक व्यापक तथा लोकप्रिय हो गया। मध्यकाल में रामकथा का खुब विकास हुआ। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना कर समाज में रामभक्ति की महत्ता को प्रतिष्ठित कर दिया। आज भी करोड़ों हिन्दू राम की सगुणोपासना करते हैं।

3. शैव धर्म (Shaivism):
उत्पत्ति तथा विकास:
'शिव' से सम्बद्ध धर्म को 'शैव' कहा जाता है जिसमें 'शिव' को इष्टदेव मानकर उनकी उपासना किये जाने का विधान है। शिव के उपासक 'शैव' कहे जाते हैं। शिव तथा उनसे सम्बन्धित धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। सैन्धव सभ्यता की

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

खुदाई में मोहेनजोदड़ो से एक मुद्रा पर पद्मासन में विराजमान एक योगी का चित्र मिलता है ।उसके सिर पर त्रिशूल जैसा आभूषण तथा तीन मुख हैं । सर जॉन मार्शल ने इस देवता की पहचान ऐतिहासिक काल के शिव से स्थापित की है । अनेक स्थलों से कई शिवलिंग भी प्राप्त होते हैं । इससे सूचित होता है कि यह भारत का प्राचीनतम धर्म था ।ऋग्वेद में शिव को 'रुद' कहा गया है जो अपनी उग्रता के लिये प्रख्यात है । क्रुद्ध होने पर वे मानव तथा पशु जाति का संहार करते थे अथवा महामारी फैला देते थे । अतः त्रग्वैदिक काल में रुद्र की उपासना उनके क्रोध से बचने के निमित्त किया करते थे । वस्तुतः रुद्र में विनाशकारी तथा मंगलकारी दोनों ही प्रकार की शक्तियाँ निहित थीं ।बताया गया है कि न मानने वाले मनुष्यों को वे अपने बाणों से छिन-भिन्न कर डालते है किन्तु अपने भक्तों के प्रति वे अत्यन्त उपकारी है जिससे उनकी संज्ञा शिव है । भक्ति द्वारा वे आसानी से प्रसन्न किये जा सकते है । वे प्राणियों के रक्षक तथा संसार के स्वामी है । उनके पास सहस्त्रों औषधियाँ थीं जिनसे रोगों से छुटकारा मिलता था ।ऋग्वेद की देवमण्डली में रुद्र का स्थान विशेष महत्वपूर्ण नहीं था किन्तु वाद की संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में उनकी महत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि पाते है । वाजसनेयी संहिता के शतरुदीय मन्त्र में रुद्र को समस्त लोकों का स्वामी बताया गया है ।[22] वे अन्नों, खेतों तथा वनों के अधिपति होने के साथ ही साथ चोर, डाकुओं, ठगों आदि जघन्य जीवों के भी स्वामी बताये गये हैं ।अथर्ववेद में उन्हें भव, शर्व, पशुपति, भूपति आदि कहा गया हैं । उन्हें व्रात्यों का भी स्वामी कहा गया है । रुद्र का समीकरण अग्नि तथा सवितृ के साथ किया गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों में रुद्र की गणना सर्व प्रमुख देवता के रूप में मिलती है जिनकी शक्ति से देवता तक डरते थे । उन्हें 'सहस्राक्ष' कहा गया है । उनके आठ नाम बताये गये हैं- रुद्र, सर्व, उग्र, अशनि, भव, पशुपति, महादेव तथा ईशान ।इनमें प्रथम चार उनके उग्ररूप तथा अन्तिम चार मगलरूप के द्योतक है । ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया कि प्रजापति ने अपनी कन्या से समागम किया जिससे कुद्ध होकर देवताओं ने उसे दण्डित करने का निश्चय किया ।उन्होंने अपने रौद्र रूपों से 'भूतपति' का सृजन किया जिसने प्रजापति का वध कर डाला और इस कार्य से वह 'पशुपति' सता से विभूषित हुआ । इससे ऐसा संकेत होता है कि ब्राह्मण काल में शैवधर्म ठोस आधार प्राप्त कर रहा था ।

उपनिषद्-काल में रुद्र की प्रतिष्ठा में और अधिक वृद्धि पाते हैं । श्वेताश्वतर तथा अथर्वशिरस् में रुद्र की महिमा का प्रतिपादन मिलता है । श्वेताश्वतर उपनिषद् रुद्र की समता परमब्रह्म से स्थापित करते कहता है जो अपनी शक्ति से संसार पर शासन करता है, जो प्रलय के समय प्रत्येक वस्तु के सामने विद्यमान रहता तथा उत्पत्ति के समय जो सभी वस्तुओं का सृजन करता है वह रुद्र है । वह स्वयं अनादि एवं अजन्मा है । अर्थवशिरस् में भी इसी प्रकार के विचार मिलते हैं ।महाकाव्यों के समय में आते-आते शैवधर्म को व्यापक लोकाधार प्राप्त हो गया । रामायण से पता चलता है कि शिव न केवल उत्तरी अपितु दक्षिणी भारत के भी देवता बन गये थे । लंका तक में उनकी पूजा की जाती थी । उन्हें महादेव, शम्भु, त्र्यम्बक, भूतनाथ आदि विरुद्ध प्रदान किये गये हैं ।किन्तु रामायण मूलतः एक लोक ग्रन्थ है । अतः यहाँ विष्णु को शिव की अपेक्षा अधिक महान् देवता बताया गया है । महाभारत में शिव की प्रतिष्ठा का व्यापक विवेचन मिलता है । इसके प्रारम्भिक अंशों में तो शिव कोई महत्वपूर्ण देवता नहीं लगते किन्तु वाद के अंशों में हम उनका चित्रण सर्वोच्च देवता के रूप में पाते है । उन्हें वासुदेव विष्णु के समक्ष अथवा कहीं-कहीं उनसे भी महत्तर दिखाया गया है ।द्रोणपर्व से पता चलता है कि कृष्ण तथा अर्जुन शिव से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिये हिमालय पर्वत पर जाकर उनकी आराधना करते है । वे उन्हें 'विश्व की आत्मा' बताते है । भक्ति से प्रसन्न होकर शिव अर्जुन को पाशुपतास्त्र प्रदान करते हैं । महाभारत में विभिन्न स्थलों पर शिव को सर्वदेव, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान आदि संज्ञा प्रदान की गयी है तथा बताया गया है कि देवता ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक उनकी आराधना करते है ।अनुशासन पर्व में कहा गया है कि स्वयं कृष्ण ने पुत्र प्राप्त करने के निमित्त हिमालय पर्वत पर जाकर शिव की आराधना की थी तथा शिव ने प्रसन होकर उन्हें मनोवांच्छित फल प्राप्त करने के लिये वरदान दिया था । इस विवरण से सकेत मिलता है कि शिव सर्वोच्च देवता के रूप में मान्य थे । एक स्थान पर कृष्ण युधिष्ठिर से कहते है कि शिव सभी चल-अचल वस्तुओं के स्रष्टा हैं तथा उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है ।शिव की उपासना अनेक साहित्यिक तथा पुरातात्विक प्रमाणों से सिद्ध होती है । भारत की प्राचीनतम आहत मुद्राओं, जिनमें से कुछ की तिथि ईसा पूर्व छठी-पाँचवीं शती तक जाती है, के ऊपर भी शिवोपासना के प्रतीक वृषभ, नन्दिपद आदि चिन्ह मिलते हैं । यूनानी राजदूत मेगस्थनीज 'डायनोसस' के नाम से शिवपूजा का उल्लेख करता है जो पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक प्रचलित थी । अर्थशास्त्र से भी पता चलता है कि मौर्य युग में शिव पूजा प्रचलित थी ।[23]

कौटिल्य नगर के मध्य में शिवसदन स्थापित करने का सुझाव देता है । पतंजलि के महाभाष्य से पता चलता है कि ईसा पूर्व दूसरी शती में शिव की मूर्ति बनाकर पूजा की जाती थी । महाभाष्य में शिव के विभिन्न नामों-रुद्र, गिरीश, महादेव, त्र्यम्बक, भव, सर्व आदि का उल्लेख मिलता है । शिव के उपासकों को 'शैव' कहा गया है ।शक, पल्हव, कुषाण आदि शासकों के सिक्कों पर शिव, वृषभ, त्रिशूल की आकृतियाँ मिलती है जिनसे स्पष्ट है कि विदेशियों में भी शिव पूजा का प्रचार था । गुप्त राजाओं के समय में वैष्णव धर्म के साथ ही साथ शैव धर्म की भी महती उन्नति हुई । शिव की उपासना में मन्दिर तथा मूर्तियां स्थापित की गयीं ।उदयगिरि गुहालेख से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्रधानमन्त्री वीरसेन शैव था तथा उसने उदयगिरि पहाड़ी पर एक शैव गुफा का निर्माण करवाया था । कुमारगुप्त प्रथम के काल में करमदंडा तथा खोह में शिवलिंगो की स्थापना करवायी गयी थी । गुप्त काल में भूमरा में

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

शिव तथा नचनाकुठार में पार्वती के मन्दिरों का निर्माण करवाया गया था ।गुप्तकालीन रचनाओं में अनेक स्थानों पर शिव पूजा का उल्लेख मिलता है । कालिदास शिव के अनन्य उपासक थे । उन्होंने कुमारसम्भव में शिव की महिमा का गुणगान किया है । इस काल के पुराण भी शिव के माहात्म्य का प्रतिपादन करते है । उन्हें देवों में श्रेष्ठ महादेव (देवेषु महान् देवों महादेव) कहा गया है ।पुराणों में लिंगपूजा का भी उल्लेख मिलता है । इन सभी विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि पाँचवीं शती तक समाज में शैव धर्म ने व्यापक लोकाधार प्राप्त कर लिया था तथा शिव विभिन्न नामों और रूपों में पूजे जाते थे । सम्भवतः लिंग रूप में शिव पूजा का प्रसार गुप्तकाल में ही हुआ था ।

गुप्त काल के पश्चात भी शैवधर्म की उन्नति होती रही । वर्धनकाल में इसका समाज में काफी प्रचार था । बाणभट्ट तथा हुएनसांग दोनों ही इसका उल्लेख करते है । हर्षचरित में कहा गया है कि थानेश्वर नगर के प्रत्येक घर में भगवान शिव की पूजा होती थी (गृहे-गृहे अत्यंत भगवान खण्डपरशु) ।हुएनसांग लिखता है कि वाराणसी शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र था जहाँ उनके एक सौ मन्दिर थे । यहाँ शिव के 10 हजार भक्त निवास करते थे । उज्जैन का महाकाल मन्दिर भी पूरे देश में प्रसिद्ध था । हर्ष के समकालीन शासक शशांक एवं भास्करवर्मा भी शैतमतानुयायी थे । शशांक तो कट्टर शैव था ।राजपूतकाल (700-1200 ई°) में भी शैव धर्म समाज में अत्यधिक लोकप्रिय था । साहित्य तथा अभिलेख, दोनों इसकी पुष्टि करते हैं । कई राजपूत शासक शिव के अनन्य उपासक थे तथा उन्होंने उनके विशाल तथा भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया था । चन्देल युग में खजुराहो का सुप्रसिद्ध कंदारिया महादेव मन्दिर निर्मित हुआ ।राजस्थान, गुजरात, मध्यभारत, बंगाल, असम, आदि सर्वत्र शिव मन्दिर एवं मूर्तियों निर्मित की गयीं । गुजरात के काठियावाड में स्थित सोमनाथ का मन्दिर पूर्व मध्यकाल में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं समृद्ध था जो महमूद गजनवी द्वारा तोड़ डाला गया । अल्वेरूनी इसका विवरण देता है । मन्दिरों के अतिरिक्त शिव तथा पार्वती की अनेक मूर्तियों का भी निर्माण किया गया । शिव लिंगों की भी स्थापना हुई ।उत्तरी भारत के साथ ही साथ दक्षिणी भारत में भी शिव-पूजा का व्यापक प्रचार-प्रसार था । दक्षिण में शासन करने वाले चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल आदि राजवंशों के समय में शैव धर्म की उन्नति हुई तथा शिव के अनेक मन्दिर तथा मूर्तियों बनवायी गयीं ।राष्ट्रकूटों के समय में एलोरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर निर्मित किया गया था । पल्लव काल में शैव धर्म का प्रचार-प्रसार नायनारों द्वारा किया गया । नायनार सन्तों की संख्या 63 बताई गयी है जिनमें अप्पार, तिरुज्ञान, सम्बन्दर, सुन्दर मूर्ति, मणिक्कवाचगर आदि के नाम उल्लेखीय हैं ।[20]

इनके भक्तिगीतों को एक साथ 'देवारम' में संकलित किया गया है । इनमें अभार, जिसका दूसरा नाम तिरूनाबुक्करशु भी मिलता है, पल्लवनरेश महेन्द्रवर्मन् प्रथम का समकालीन था । उसका जन्म तिरुगमूर के बेल्लाल परिवार में हुआ था । बताया जाता है कि पहले वह एक जैन मठ में रहते हुए भिक्षु जीवन व्यतीत करता था ।बाद में शिव की कृपा से उसका एक असाध्य रोग ठीक फलस्वरूप जैन मत का परित्यागकर वह निष्ठावान शैव वन गया । अप्पर ने दास भाव से शिव की भक्ति प्रचार जनसाधारण में किया । तिरुज्ञान सम्बन्दर, शियाली (तन्जोर जिला) के एक ब्राह्मण परिवार मैं उत्पन्न हुआ था । उसके विषय में एक कथा में बताया गया है कि तीन वर्ष की आयु में ही पार्वती की कृपा से उसे दैवीज्ञान प्राप्त हो गया था ।उसके पिता ने उसे सभी सभी तीर्थों का भ्रमण कराया । कहा जाता है के पाण्ड्य देश कि यात्राकर उसने वहाँ के राजा तथा प्रजा को उसने शास्त्रार्थ में पराजित किया । उसने कई भक्ति गीत गाये तथा इस प्रकार उसकी मान्यता सबसे पवित्र सन्त के रूप में हो गयी । आज भी तमिल देश के अधिकांश शैव मन्दिरों में उसकी पूजा की जाती है ।

निष्कर्ष

सुन्दरमूर्ति का जन्म नावलूर के एक निधन ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उसका पालन-पोषण नरसिंह मुवैयदरेयन नामक सेनापति ने किया । यद्यपि उसका जीवन-काल मात्र अठराह वर्षों का रहा फिर भी वह अपने समय का अन्य शैवभक्त बन गया । उसने लगभग एक सहस्त्र भक्तिगीत लिखे ।सुन्दरमूर्ति को 'ईश्वरमिश्र' की उपाधि से संबोधित किया गया । इसी प्रकार मणिक्कवाचगर, मदुरा के समीप एक गाँव के ब्राह्मण वाद-विवाद में परास्त कर ख्याति प्राप्त किया । उसने भी अनेक भक्तिगीत लिखे जिन्हें 'तिरुवाशगम्' में संग्रहीत किया गया है । उसके गीतों में प्रेम तत्व की प्रधानता है ।उसके द्वारा विरचित एक भक्तिगीत का हिन्द रूपांतर इस प्रकार है:

इंद्र या विष्णु अथवा ब्रह्मा

उनके दिव्य सुख की कामना मुझे नहीं हैं

मैं तेरे संतों का प्रेम चाहता हूँ

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

भले ही मेरा पर इससे नष्ट हो जाए ।

मैं रौरव नरक में जाने को तैयार हूँ

बस तेरी कृपा मेरे साथ रहे

जो सर्वश्रेष्ठ है मेरा मन

तेरे अतिरिक्त और देव की कल्पना कर ही कैसे सकता है ?......

मेरे पास कोई गुण, तपस्या, गान, आत्मसंयम नहीं था

कठपुतली मात्र था में

दूसरों की इच्छा पर नाचता था, प्रसन्न होता था और गिरता था । किन्तु मेरे

अंग-प्रत्यंग

भर दी है प्रेम की मदमत्त अभिलाषा जिससे मैं पहुंच सकूँ

वहाँ तक जहाँ से लौटा नहीं जा सकता ।

उसने अपना सौदर्य दिखाकर मुझे अपना बना लिया । हाय में,

कब उसके पास जाऊँगा मैं ?

इन सभी शैव सन्तों ने भजनकीर्तन, शास्त्रार्थ एवं उपदेशों के माध्यम से तमिल समाज में शिव भक्ति का जोरदार प्रचार किया । इन्होंने भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन बताया । नायनार जाति-पाँति के विरोधी थे तथा उन्होंने समाज के सभी वणों के लोगों में जाकर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया । चोली के समय में सुदूर दक्षिण में शैव धर्म का खूब उत्थान हुआ ।चोल शासक राजराज प्रथम शिव का अनन्य उपासक था जिसने तंजोर में राजराजेश्वर का सुप्रसिद्ध शैव मन्दिर निर्मित करवाया था । शिव की कई मूर्तियाँ भी स्थापित की गयीं । राजराज का पुत्र तथा उत्तराधिकारी राजेन्द्र चोल भी शिव का भक्त था जिसने अपनी राजधानी में 'वृहदीश्वर' मन्दिर का निर्माण करवाया था । उसके समय में शैव धर्म दक्षिणी भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म बन गया ।चोल शासक कुलोत्तुंग प्रथम (1070-1120 ई°) का काल शैव धर्म की उन्नति के लिये उल्लेखनीय है । वह एक कट्टर शैव था जिसके विषय में कहा गया है कि शिव के प्रति अतिशय श्रद्धा के कारण उसने चिदम्बरम् मन्दिर में स्थापित विष्णु की प्रतिमा को उखाड़ कर समुद्र में फेंकवा दिया था ।[10] इस घटना से क्षुब्ध होकर वैष्णव आचार्य रामानुज को कुछ काल के लिये चोल राज्य छोडना पड़ा था ।यह भी बताया गया है कि उसने रामानुज या उनके शिष्यों को उत्पीड़ित किया था । इन कथानकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि चोल कालीन तमिल समाज में शैव धर्म का ही वोल-वाला था । इस वंश के अधिकांश राजाओं ने विशाल तथा भव्य शैव मन्दिरों, शिव लिंगों तथा मूर्तियों के निर्माण में गहरी रुचि प्रदर्शित की थी ।इस प्रकार देखते हैं कि शिव की उपासना भारत में प्रागैतिहासिक युग से प्रारम्भ होकर प्राचीन काल के अन्त तक विकसित होती रही तथा शिव को हिन्दू धर्म में एक अत्यन्त प्रमुख स्थान मिला । उनकी गणना त्रिदेवों-ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश में की शैव धर्म भारतीय हिन्दू जनता का एक प्रमुख धर्म बना हुआ है ।नैष्ठिक हिन्दू देश के विभिन्न भागों में स्थित द्वादश ज्योतिर्लिगों-सोमनाथ, केदारनाथ, विश्वनाथ (काशी), वैद्यनाथ, मल्लिकार्जुन (आन्ध्र), नागेश्वर (द्वारका के समीप), महाकालेश्वर (उज्जैन), रामेश्वरम्, ओंकारेश्वर (अमलेश्वर-म.प्र.), भीमेश्वर (नासिक), त्र्यम्बकेश्वर (नासिक) तथा घुश्मेवर (औरंगावाद-महाराष्ट्र) -के दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं ।शिव के व्यक्तित्व में आर्य तथा आर्येतर तत्वों का समन्वय देखने को मिलता है । विष्णु तथा शिव के साथ-साथ हिन्दुओं के तीसरे प्रमुख देवता 'ब्रह्मा' है किन्तु उनके नाम से कोई सम्प्रदाय नहीं चला । ब्रह्मा का एकमात्र मन्दिर राजस्थान में अजमेर के पास पुष्कर तीर्थ में स्थित है । इसके प्रवेश द्वार पर उनके वाहन हंस की मूर्ति उत्कीर्ण है ।[19]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

शैव धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय:
शिव के उपासकों के कई सम्प्रदाय वन गये, जिनके आधार एवं नियम अलग-अलग थे ।

कुछ सम्प्रदायों का परिचय इस प्रकार है:
I. पाशुपत सम्प्रदाय:
यह शैवों का सबसे प्राचीन सम्प्रदाय है जिसकी उत्पत्ति ईसा-पूर्व दूसरी शती में हुई थी । पुराणों के अनुसार इस सम्प्रदाय की स्थापना लकुलीश अथवा लकुली नामक ब्रह्मचारी ने की थी । इस सम्प्रदाय के अनुयायी लकुलीश को शिव का अवतार मानते हैं । इस सम्प्रदाय के लोग अपने हाथ में एक लगुड या दण्ड धारण करते थे जिसे शिव का प्रतीक माना जाता था ।इसका प्राचीनतम अंकन कुषाण शासक हुविष्क (द्वितीय शती) की एक मुद्रा पर मिलता है । गुप्तकाल में भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी थे । चन्दगुप्त द्वितीय कालीन मथुरा लेख में उदिताचार्य नामक एक पाशुपत मतानुयायी का उल्लेख मिलता है जिसने दो लिंगों की स्थापना करवायी थी ।बाणभट्ट ने कादम्बरी में इस सम्प्रदाय का उल्लेख किया है तथा लिखा है कि इसके अनुयायी अपने मस्तक पर भस्म पोतते थे तथा हाथ में रुद्राक्ष की माला धारण करते थे । हुएनसांग सिन्ध तथा अहिच्छत्र के लोगों को पशुपात मतानुयायी कहता है । राजपूत काल में इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार था तथा कई शासक इसके पोषक कलचुरि-चेदि वंश के शासक भी इस मत के मानने वाले थे ।कहीं-कहीं पाशुपत तथा शैव को एक-दूसरे का पर्याय बताया गया है । शैव सन्तों के लिये 'पाशुपत आचार्य' संज्ञा का प्रयोग मिलता है । महेश्वर कृत 'पाशुपतसूत्र' तथा वायु पुराण से पाशुपत सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का गान होता है ।[20]

पाशुपत सम्प्रदाय के अन्तर्गत पाँच पदार्थों की सत्ता को स्वीकार किया गया है:
(1) कार्य:
जिसमें स्वतन्त्र शक्ति नहीं है उसे कार्य कहा जाता है । इसमें जड़ तथा चेतन की सभी सत्तायें आ जाती हैं ।

(2) कारण:
जो सभी वस्तुओं की सृष्टि तथा संहार करता है यही कारण है । यह स्वतन्त्र तत्व है जिसमें असीम ज्ञान तथा शक्ति होती है । यही परमेश्वर (शिव) है ।

(3) योग:
इसके द्वारा चित्त के माध्यम से जीव तथा परमेश्वर में सम्बन्ध स्थापित होता है । इसके दो प्रकार है क्रियात्मक (जय, तपादि) तथा अक्रियात्मक (क्रियाओं से निवृत्त होकर तत्व-गान की प्राप्ति करना) ।

(4) विधि:
जीव को महेश्वर की प्राप्ति कराने वाले साधन को विधि कहा गया है । मुख्य (चर्या) तथा गौण इसके दो विभेद है । शरीर पर भस्म लगाना, मन्त्र, जप, प्रदक्षिणा आदि इसके प्रमुख अंग माने गये ।

(5) दुःखान्त:
इसका अर्थ है दुखों से मुक्ति पाना । इसके दो भेद बताये गये है- अनात्मक अर्थात् मात्र दुखों से छुटकारा तथा सात्मक अर्थात् गान और कर्म की शक्ति द्वारा अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करना ।भारत तथा विश्व के कुछ अन्य भागों में आज भी पाशुपत सम्प्रदाय का प्रचार है । नेपाल के काठमाण्डू का पशुपतिनाथ मंदिर आज भी इस मत के श्रद्धालूओं का विशिष्ट केंद्र है ।

II. कापालिक सम्प्रदाय:
शैव धर्म का दूसरा सम्प्रदाय कापालिक है जिसके उपासक भैरव को शिव का अवतार मानकर उनकी उपासना करते है । इस मत के अनुयायी सुरा-सुन्दरी का पान करते है, जटा-जूट रखते है, माँस ग्रहण करते है, शरीर पर श्मशान की भस्म लगाते है तथा हाथ में नरमुण्ड धारण करते हैं । इसके आचार वीभत्स हैं ।इस मत के उपासक अत्यन्त क्रूर स्वभाव के होते है । भवभूति के 'मालतीमाधव' नाटक में पता चलता है कि 'श्रीशैल' नामक स्थान कापालिकों का प्रमुख केन्द्र था । वे नरमुण्डों की माला पहने रहते थे । भैरव को प्रसन्न करने के लिये वे मनुष्यों तक की वलि देते थे ।[22]

III. लिंगायत सम्प्रदाय:
लिंगायत अथवा वीर शैव धर्म का ही एक सम्प्रदाय था जिसका प्रचार बारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत (विशेषकर कर्नाटक तथा तेलुगु प्रदेश) में व्यापक रूप से हुआ । इस सम्प्रदाय ने दक्षिण के सामाजिक-धार्मिक जीवन में वास्तविक क्रान्ति लाने के लिये एक

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

जन-आन्दोलन का सूत्रपात किया ।लिंगायत सम्प्रदाय का संस्थापक बसव कल्याणी के कलचुरि नरेश विज्जल (विजयादित्य, 1145-1167 ई°) का मंत्री था । शैवागम परम्परा के अनुसार इस मत के संस्थापक पाँच ऋषि थे-रेणुकाचार्य, दारुकाचार्य, एकोरामाचार्य, पण्डिताराध्य तथा शिवाराध्य । इनका जन्म शिव के पाँच विशिष्ट लिंगों से हुआ था । कुछ लेखक इसके सिद्धान्तों के ऋग्वेद तथा उपनिषदों से निसृत बताते है ।किन्तु इस प्रकार की मान्यता के लिये कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है । वास्तविकता यह है कि बसव तथा उसके शिष्य चन्नबासव के आधार पर ही लिंगायत मत के विषय में प्रमाणिक जानकारी प्राप्त करते है । बसव का जन्म वीजापुर जिले के वगेवाडी नामक ग्राम में हुआ था । वे मादिराज तथा मादलाम्बिका के पुत्र थे जो धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे ।परम्परा के अनुसार उनका जन्म शैव सम्प्रदाय के उद्धार के लिये हुआ जो उस समय पतनोन्यूख था । आठ वर्ष की आयु में उन्होंने शैव मत का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया । उन्होंने अपने को शिव का विशेष भक्त बताया तथा घोषणा की कि वे संसार में जाति प्रथा को समाप्त करने के लिये आये है । कल्याणी नरेश विज्जल ने उन्हें अपना प्रधानमंत्री, प्रधान सेनापति तथा कोषाध्यक्ष नियुक्त कर दिया ।इन पदों पर रहते हुए उन्होंने अपने मत का जोरदार प्रचार किया । इस कार्य में उन्हें अपने योग्य भांजे चन्नबसव की सहायता मिली । इस प्रक्रिया में उन्होंने जैन आदि कुछ धार्मिक सम्प्रदायों पर अत्याचार भी किया । धीरे-धीरे उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गयी तथा उनके सम्प्रदाय ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया । उसके एक कट्टर का नाम एकान्तद रामस्य मिलता है जिसने इस मत के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

फ्लीट का तो कहना कि लिंगायत आन्दोलन का वास्तविक जनक यही था तथा बसव ने काफी बाद में इसको राजनैतिक सहायता प्रदान किया था । बसव पुराण से इस वात की पुष्टि होती है । लिंगायत मत के प्रचारकों ने अपना पूरा साहित्य कन्नड़ गद्य में लिखा । इसे 'वचन' कहा जाता है । वचन एक दूसरे से पृथक अनुच्छेद है ।प्रत्येक के अन्त में शिव का कोई न कोई नाम आता है जिससे उनकी वन्दना की जाती है । प्रायः 200 वीर शैव लेखक हुए जिनमें कुछ महिलायें भी थीं । धन का घमण्ड, कर्मकाण्ड तथा पुस्तकीय ज्ञान की निस्सारता, जीवन की अनिश्चितता, शिव भक्तों का आध्यात्मिक विशेषाधिकार आदि इनके विषय है ।लोगों को सांसारिक धन-दौलत एवं सुख के साधनों के परित्याग, संसार में अलिप्तता का जीवन व्यतीत करने तथा शिव की शरण में जाने का उपदेश दिया गया है । वचन के उपदेश अत्यन्त उपदेशात्मक, भक्तिपूर्ण एवं सारगर्भित है । बसव ने अपना जनेऊ तोड़ दिया, वर्णाश्रम धर्म, सन्यास, तप आदि को नकारते हुए मोक्ष का अधिकार सभी जातियों को प्रदान किया ।लिंगायत सम्प्रदाय के अनुयायी अपने साथ सदा एक छोटा सा शिवलिंग रखते थे । यह सामान्यतः एक चाँदी की डिबिया में रहता था जिसे वे अपनी गरदन में धागे से बांधकर लटकाये रहते थे । ये लिंग तथा नीन्द की पूजा करते थे । बसव को नन्दि का अवतार बताया गया है ।ये ब्राह्मण-विरोधी है तथा मूर्ति-पूजा एवं पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते । वेदों की प्रामाणिकता इन्हें मान्य नहीं है तथा यज्ञों के अवसर पर दी जाने वाली बलि का भी ये विरोध करते है । इनमें बाल-विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था तथा विधवा-विवाह को मान्यता दी गयी थी ।धार्मिक एवं सामाजिक पाखण्डों पर बसव द्वारा दिया गया यह व्यंग उल्लेखनीय है-

"बूचड़खाने से लाई जाने वाली भेड़ उस माला के पते को खाती है जिससे उसे सजाया जाता हैं । साँप के मुंह में पड़ा हुआ मेढक अपने मुँह के पास पड़ी हुई मक्खी को निगलना चाहता है । ऐसा ही हमारा जीवन है । मृत्यु के मुँह में ढकेला जाने वाला व्यक्ति दूध और घी पीता है.......जब वे पत्थर में खुदा हुआ साँप देखते है तो उस पर दूध चढ़ाते है और यदि जीवित साँप दिखाई देता है तो वे 'मारो-मारो' चिल्लाते है? परमात्मा के सेवक को-जो भोजन परोसने पर खा सकता है- वे कहते है भाग जा भाग जा, परन्तु परमात्मा की प्रतिमा को-जो खा नहीं सकती-वे धोग लगाते है ।"लिंगायतों के संगठन में मठों का प्रमुख स्थान था । इस सम्प्रदाय के सभी सदस्यों के बीच पूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक समानता देखने को मिलती है । ऐसा इस्लान एवं जैन मत के प्रभाव से संभव हुआ । बसव ने तीर्थ-यात्रा, यज्ञ-वलि आदि का विरोध किया । शव-दाह का भी अनुयायी आज भी भू-समाधिस्थ किये जाते हैं ।लिंगायतों के अधिक उदार सामाजिक विचारों के कारण निम्न जाती के लोगों का उन्हें समर्थन प्राप्त हुआ तथा उनके धर्म ने एक लोक धर्म का रूप ग्रहण कर लिया । ये 63 नायनार सन्तों के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हैं तथा उन्हें अपना प्राचीन गुरु मानते हैं । इसके पश्चात वे 770 ऋषियों का भी सम्मान करते हैं ।लिंगायत निष्काम कर्म में विश्वास करते हैं । शिव को परम तत्व माना गया है जो पूर्णतया अहंता तथा स्वतंत्र है । सृष्टि की उत्पत्ति शिव से ही होती है तथा भक्ति के कारण उसका शिव से तादात्म्य होता है । इस सम्प्रदाय में लिंग पूजा का विशिष्ट स्थान है ।[23]

लिंग के तीन भेद किये गये हैं:

1. भाव लिंग:

यह सर्वश्रेष्ठ परम तत्व है जा दिक् काल की सीमा से परे है । यह कलाविहीन एवं सत्य स्वरूप है । इसका साक्षात्कार केवल श्रद्धा से किया जा सकता है ।

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

2. प्राण लिंग:
यह कलाविहीन तथा कलायुक्त दोनों है । इसका ज्ञान सूक्ष्म दृष्टि से हो सकता है । यह सूक्ष्म तत्व है ।

3. इष्ट लिंग:
यह स्थूल रूप है जिसे नेत्रों में देखा जा सकता है ।

इन तीनों को क्रमशः सत्, चित् तथा आनन्द कहा गया है । लिंग की शक्ति को कला तथा अंग की शक्ति को भक्ति कहा गया है । शिव के दो भेद है- उस स्थल तथा लिंग स्थल । पहला उपास्य तथा दूसरा उपासक (जीव) है । लिंगायतों के अनुसार जो विधिवत उनके मत में दीक्षित होता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है । कुछ विद्वानों की मान्यता है कि यहाँ लिंग शिश्न का प्रतीक न होकर परमात्मा को प्राप्ति का प्रतीक है ।इस प्रकार लिंगायत सम्प्रदाय बारहवीं शती में एक सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन के रूप में प्रवर्तित हुआ जिसने अपने समकालीन समाज एवं धर्म की कुरीतियों पर जोरदार प्रहार किया । लेकिन इसके बावजूद दक्षिण में वर्णाश्रम धर्म का प्रचलन बना रहा तथा ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता विद्यमान रही । हैदराबाद तथा मैसूर के कुछ भागों में आज भी लिंगायत अपनी सत्ता बनाये हुए हैं ।

III. कश्मीरी शैव सम्प्रदाय:
कश्मीर में शैव धर्म का एक नया सम्प्रदाय विकसित हुआ जो सिद्धान्त तथा आचार में अन्य सम्प्रदायों से भिन्न था । यह शुद्ध रूप से दार्शनिक अथवा ज्ञानमार्गी सम्प्रदाय है जिसमें कापालिकों के घृणित आचारों जैसे सुरा-सुन्दरी पान, राख लगाना, नरकपाल में भोजन, मानव तथा पशु की बलि चढ़ाना आदि की कटु शब्दों में निन्दा की गयी है । ज्ञान को ही परमात्मा की प्राप्ति का एकमात्र साधन माना गया है ।कश्मीरी शैव मत में शिव को अद्वैत शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है । वह सर्वव्यापी है तथा जगत उसी का रूप है । शक्ति के साथ मिलकर वह सृष्टि की रचना करता है । चित्, आनन्द, ज्ञान क्रिया, इच्छा- ये उसकी शक्तियाँ मानी गयी है । जीव अपने वास्तविक रूप में शिव ही है किन्तु अज्ञान के अज्ञान का आवरण हटते ही वह शिव की प्राप्ति कर लेता है । यह मोक्ष किया गया है ।उपर्युक्त प्रमुख सम्प्रदायों के साथ-साथ शैव धर्म में कुछ अन्य संप्रदायों का भी प्रचलन हुआ । दसवीं शती के अन्त में मत्स्येन्द्रनाथ ने 'नाथपन्थ' नामक सम्प्रदाय चलाया । इसमें शिव के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है । इनकी क्रियायें तथा आचार बज्र यानि बौद्धों से मिलते-जुलते हैं । नाथों की साधना-पद्धति में नारी का प्रमुख स्थान है । दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में प्रचार-प्रसार किया था ।[24]

4. शाक्तधर्म (Shakta Religion):
उद्‌भव तथा विकास:
शक्ति को इष्टदेवी मानकर पुजा करने वालों का संप्रदाय 'शाक्त' कहा जाता है । प्राचीन भारतीय देवसमूह में देवताओं के साथ-साथ देवियों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है तथा शक्ति (देवी) की पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से होती रही है । वैष्णव तथा शैव धर्मों के ही समान शाक्त धर्म भी अत्यन्त लोकप्रिय रहा है ।क्रमशः शक्ति के साथ कई नाम संयुक्त हो गये-दुर्गा, काली, भवानी, चामुण्डा, रुद्राणी, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि । दुर्गा को आदिशक्ति स्वीकार कर उन्हें सृष्टि, पालन तथा संहारकर्ता के रूप में मान्यता प्रदान की गयी ।शाक्त धर्म का शैव धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है ।शिव की पत्नी पार्वती (उमा) को जगज्जननी कहा जाता है । शैवमत के ही समान शाक्त मत की प्राचीनता भी प्रागैतिहासिक युग तक जाती है । सैन्धव सभ्यता में मातृदेवी की उपासना व्यापक रूप से प्रचलित थी । खुदाई में माता देवी की बहुसंख्यक मूर्तियाँ प्राप्त होती है ।वैदिक साहित्य से अदिति, उषा, सरस्वती, श्री, लक्ष्मी आदि देवियों के विषय में विस्तृत सूचना मिलती है । ऋगवेद के दसवें मण्डल में देवीसूक्त मिलता है जिसमें वाक्शक्ति की उपासना की गयी है । वह एक स्थान पर कहती हैं- मैं समस्त जगत् की अधीश्वरी हूँ, अपने भक्तों को धन प्राप्त कराने वाली, ब्रह्म से अभिन्न मानने वाली तथा देवताओं में प्रधान हूँ । मैं सभी भूतों में स्थित हूँ ।

विभिन्न स्थानों में रहने वाले कुछ भी कार्य करते है वह सब मेरे लिये ही करते है । इसी प्रकार अदिति का माता के रूप में कई ऋचाओं में वर्णन मिलता है । वह माता, पिता तथा पुत्र सब कुछ है । सभी देवगण, पज्चजन, भूत तथा भविष्य सभी कुछ अदिति ही है । सरस्वती की ऋग्वेद में सौभाग्यदायिनी कहकर स्तुति की गयी है (सरस्वती न सुभगामयस्करत) ।अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहकर उसकी पुत्र, धन, मधुर वचन प्रदान करने के लिये स्तुति की गयी । इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि शक्ति की महत्ता को वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था । शक्ति की उपासना के उद्‌भव के पीछे वैदिक तथा अवैदिक दोनों ही प्रवृत्तियों का योगदान रहा है ।महाभारत तथा पुराणों में देवी माहात्म्य का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है । महाभारत के समय तक शाक्त सम्प्रदाय समाज में ठोस आधार प्राप्त कर चुका था । भीष्मपर्व में वर्णित है कि कृष्ण की सलाह पर अर्जुन ने युद्ध में विजय प्राप्त करने के निमित्त देवी दुर्गा की स्तुति की थी ।वहीं बताया गया है कि प्रात काल शक्ति की उपासना करने वाला व्यक्ति युद्ध में विजय

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

प्राप्त करता है तथा उसे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। विराट पर्व में युधिष्ठिर ने देवी को विन्ध्यवासिनी, महिषासुरमर्दिनी, यशोदा के गर्भ से उत्पन्न, नारायण की परमप्रिया तथा कृष्ण की बहन कहकर उनकी स्तुति की है।बताया गया कि देवी ने नन्दगोप के कुल में यशोदा के गर्भ से जन्म लिया। कंस द्वारा कन्या पर वह आकाश मार्ग से चली गयी तथा विन्ध्यपर्वत पर जाकर बस गयी। पुराणों में भी विन्धयपर्वत को देवी का निवास स्थान बताया गया है। मार्कण्डेय पुराण में देवी की महिमा का विस्तृत गुणगान करते हुए उसकी स्तुति की गई है।देवी को सभी प्राणियों में विष्णु-माया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षांति, लज्जा, जाती, शांति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ तथा भान्तिं रूँपों में स्थित बताकर उनकी उपासना की गयी है। उसे स्वर्ग तथा अपवर्ग एवं सभी प्रकार के मंगलों को देने वाली कहा गया है।उसकी सृष्टि, पालन तथा संहार की शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणों का आधार तथा गुणमयी कहकर स्तुति की गयी है। वर्णित है कि महिषासुर का वध करने के लिये विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, सूद आदि देवताओं के मुख से निसृत तेजपुज से शक्ति की उत्पत्ति हुई।उसे सभी देवताओं ने अपने-अपने अस्त प्रदान किये। शंकर ने शूल, विष्णु ने चक्र, वरुण ने शंख, वायु ने धनुषबाणयुक्त तरकस, अग्नि ने तेज, इन्द्र ने बल, यमराज ने दण्ड, ब्रह्मा ने कमण्डलु, काल ने ढाल और तलवार तथा विश्वकर्मा ने परशु देवी को भेंट किया।उस शक्ति ने महिषासुर का वध किया जिससे वह 'महिषासुरमर्दिनी' नाम से विख्यात हुई। मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की कथा एवं स्तुति से सम्बन्धित 'दुर्गासपाशती' नामक अंश है जिसका पाठ नवरात्र के दिनों मे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया जाता है।[25]

एक अन्य कथा में बताया गया है कि देवता जब शुम्भ तथा निशुम्भ जैसे असुरों से पीडित तब उन्होंने हिमालय पर्वत पर जाकर आराधना की। इससे प्रसन्न होकर देवी ने अपने को प्रकट किया तथा असुरों का विनाश कर डाला। वह अम्बिका, काली, चामुंडा, कौशिका आदि नामों से विख्यात हुई।

देवी की उपासना तीन रूपों में की जाती थी:
(1) शान्त या सौम्य रूप।

(2) उग्र या प्रचण्ड रूप।

(3) कामप्रधान रूप।

उपर्युक्त तीनों के अन्तर्गत अनेक देवियों की कल्पना की गयी है। सामान्यतः देवी के सौम्य रूप की उपासना की जाती थी। उमा, पार्वती, लक्ष्मी आदि नाम उसके सौमय रूप के ही प्रतीक हैं। दुर्गा, चंडी, कापाली, भेरवी आदि नाम उग्र रूप प्रकट करते हैं।कापालिक तथा कालमुख संप्रदाय के लोग इसी रूप की आराधना करते हैं। इसमें देवी को प्रसन्न करने के लिये पशुओं की बलि दी जाती है तथा सुरा, मांस आदि का प्रयोग मुख्य रूप से होता है। कामप्रधान रूप में देवी की उपासना शाक्त लोगों द्वारा की जाती है जो उसे आनंद भेरवी, त्रिपुर-सुंदर, ललिता आदि नाम प्रदान करते हैं। देवी के तीनों रूपों के मंदिर भारत के विभिन्न भागों में आज भी वर्तमान है।सौम्य रूप का मन्दिर जम्मू के निकट वैष्णोदेवी का है जहाँ शारदा की मूर्ति है। इसी प्रकार का एक मन्दिर सतना (म° प°) के समीप मैहर में ऊँची पहाडी पर स्थित है। कलकत्ता स्थित काली का मन्दिर देवी के उग्र रूप का है तथा असम का 'कामाख्या मन्दिर' देवी के कामप्रधान रूप का प्रतिनिधित्व करता है।शक्ति की पूजा प्रागेतिहासिक युग से लेकर आज तक अबाध गति से होती आयी है तथा हिंदू जनता में काफी लोकप्रिय है। शक्ति-पूजा का प्रथम ऐतिहासिक पुरातात्विक प्रमाण कुषाण शासक हुविष्क के सिक्कों पर अंकित देवी के चित्रों में मिलता है। इससे पता चलता है कि ईसा की प्रथम शती तक देवी की मूर्तियों बनने लगी थीं।गुप्तकाल में पौराणिक हिंदू धर्म की उन्नति हुई। इस समय विभिन्न देवताओं के साथ-साथ देवियों की उपासना भी व्यापक रूप से की जाती थी। नचना-कुठार में इस समय पार्वती के मन्दिर का निर्माण हुआ। दुर्गा, गंगा, यमुना, आदि की बहुसंख्यक मूर्तियों इस काल में विभिन्न स्थलों से मिलती है।गंगा तथा यमुना का अंकन गुप्तकालीन मन्दिरों के चौखटों पर मिलता है। हर्षकाल में भी शक्ति पूजा का खुब प्रचलन था। हर्षचरित में कई स्थानों पर दुर्गादेवी की पूजा का उल्लेख मिलता है। हुएनसाग के विवरण से पता चलता है कि उस समय दुर्गा देवी को मनुष्यों की भी बलि दी जाती थी।एक बार समुद्र से यात्रा करते हुए उसे डाकुओं ने पकड़ लिया तथा दुर्गा देवी की बलि चढाने के निमित्त उसे ले गये थे, किन्तु तूफान ने उसकी जान बचाई। पूरव मध्यकाल में देवी की उपासना अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी। देवी के अधिकांश मन्दिर इसी युग के बने है। मध्य प्रदेश के जवलपुर में भेड़ाघाट के पास चौसठ योगिनी का मन्दिर है जहाँ नवीं-दसवीं शताब्दियों में कई देवी मूतियों का निर्माण किया गया था।इनमें दुर्गा ओर सप्तमात्रिकाओं की चौवालीस मूर्तियों हैं। खुजराहों में भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं। उड़ीसा, राजस्थान आदि के विभिन्न भागों से देवी की मूर्तियाँ तथा उसकी पूजा से सम्बन्धित लेख प्राप्त होते हैं। प्रतिहार महेन्द्रपाल के लेखों में दुर्गा की महिषासुरमर्दिनी, कांचनदेवी, अंबा आदि नामों की स्तुति मिलती है।राष्ट्रकूट अमोघवर्ष महालक्ष्मी का अनन्य भक्त था। संजन लेख से पता लगता है कि उसने एक बार अपने बायें हाथ की अंगुली काटकर देवी को चढ़ा दिया था। पूर्व मध्यकाल के साहित्यकारों

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

तथा विदेशी लेखकों ने देवी के मंदिरों तथा उसकी उपासना का उल्लेख किया है । कल्हण के विवरण से पता चलता है कि शारदा देवी का दर्शन करने के निमित गौड़ नरेश के अनुयायि कश्मीर आये थे । अबुल फजल भी शारदा देवी के मंदिर का विवरण देता है ।

शाक्त-तांत्रिक विचारधारा:
पूर्व मध्यकाल तक आते-आते शाक्त-धर्म तंत्रवाद से पूर्णतया प्रभावित हो गया और शाक्त-तांत्रिक विचारधारा समाज में अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी । यहाँ तक कि प्राचीन धर्म भी इसके प्रभाव में आ गये । बौद्ध, कश्मीर शैवमत, वैष्णव, जैन आदि सभी धर्मों पर शाक्त-तांत्रिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा तथा लोगों की आस्था तंत्र-मंत्रों में दृढ़ हो गयी ।जैन मत की देवी सचिवा देवी की उपासना शाक्त ढंग से की जाने लगी तथा कुछ जैन आचार्यों ने चौसठ योगिनियों के ऊपर सिद्धि प्राप्ति कर लेने का दावा किया । श्रीहर्ष ने अपने ग्रंथ नैषधचरित में सरस्वती मंत्र की महत्ता का प्रतिपादन किया जबकि गुजरात के चौलुक्य शासक कुमारपाल जैन नमस्कार यंत्र में अटूट विश्वास रखता था ।उसका विश्वास था कि इसी मंत्र के कारण उसे सर्वत्र सफलता प्राप्त हुई थी । तंत्रवाद के बढते हुए प्रभाव के फलस्वरूप समाज में अनेक अन्धविश्वास दृढ़ हो गये । किन्तु तंत्रवाद से हिन्दू सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा को कुछ लाभ भी हुए । जैसा कि रसार्णव (बारहवीं शती) से स्पष्ट होता है तंत्रवाद ने भारतीय रसायन शास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

स्त्रियों की दशा सुधारने तथा जाति-पांति के बन्धनों को शिथिल बनाने की दिशा में भी तांत्रिक विचारधारा का कुछ योगदान रहा । शाक्त-तांत्रिक मत में एक ही देवता की पूजा पर विशेष बल दिया जाता था । इस विचारधारा ने पूर्वमध्यकाल में भक्ति आन्दोलन को वेग प्रदान किया । तांत्रिक सहजयान से ही नाथ सम्प्रदाय का उदय हुआ जिसने मध्यकाल में कबीर, दादू, नानक आदि सन्तों के लिये मार्ग प्रशस्त किया ।तांत्रिक विचारधारा का आधार 'शक्तिवाद' है । यही कारण है कि कश्मीर शैवमत शक्ति को शिव की अन्तर्निहित प्रकृति तथा सर्वोच्च शक्ति मानता है । यही सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है । तांत्रिक धर्म का लक्ष्य 'ज्ञान कर्म समुच्चयवाद' पर केन्द्रित है । इसमें जप, तप, मंत्र पर विशेष बल दिया जाता है ।इन्हीं के द्वारा साधक स्वास्थय, धन तथा शक्ति की प्राप्ति करता है । सम्प्रति शाक्त उपासना के तीन प्रमुख केन्द्र है-कश्मीर, कान्ची तथा असम स्थित कामाख्या । प्रथम दो श्रीविद्या के प्रमुख स्थल है जबकि अन्तिम कौल मत का प्रसिद्ध केन्द्र है ।[26]

शाक्तधर्म के सिद्धान्त तथा आचार:
शाक्त मत के अनुयायी महामातृ देवी को आदि शक्ति मानकर उसी की आराधना करते है । वही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती है । शक्ति साधक देवी के किसी एक रूप को इष्ट मानकर उसके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करने में विश्वास रखता है । वस्तुतः शक्ति, शिव का ही क्रियाशील रूप है । इस मत में भक्ति, ज्ञान तथा कर्म तीनों को महत्व दिया गया है ।तन्त्र-मन्त्र, ध्यान, योग आदि का भी स्थान है । सांसारिक भोगों को मोक्ष के मार्ग में साधक माना गया है । शाक्त धर्म में 'कुण्डलिनी' नामक रहस्यमय शक्ति का अत्यधिक महत्व है । साधना तथा मन्त्रों के द्वारा जब यह शक्ति जागृत की जाती है तभी मुक्ति मिलती है । कौलमार्गी शाक्त पंचमकारों अर्थात मदिरा, मांस, मल, मुद्रा तक मैथुन की उपासना के द्वारा मुक्ति पाने में विश्वास रखते हैं । उनके आचरण अत्यन्त घृणित हैं ।

शाक्त सम्प्रदाय में देवी की स्तुति प्रायः तीन प्रकार में की जाती है:
(1) पहले में महापद्मवन में शिव की गोद में बैठी हुई देवी का ध्यान किया जाता है । उनका ध्यान हृदय तथा मन को आल्हादित करता है । देवी स्वयं आनन्द स्वरूपा हैं ।

(2) इसमें भूर्जपत्र, रेशमी वस्त्र अथवा स्वर्णपत्र की सहायता से नौ योनियों का वृत बनाकर उसके मध्य में एक योनि का चित्र खींचकर चक्र बनाया जाता है । इसे 'श्रीचक्र' कहते है, इसकी पूजा दो प्रकार से की जाती है-एक जीवित स्त्री की योनि की तथा दूसरे काल्पनिक योनि की । इस आधार पर उनकी दो शाखाएं भी हैं ।

(3) इसमें दार्शनिक ढंग से ज्ञान के द्वारा देवी की उपासना की जाती है । इसे पद्धति में अध्ययन तथा गान को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है । कुत्सित आचरणों की इसमें निन्दा करते हुए उन्हें त्याज्य बताया गया है ।

अन्तिम विधि द्वारा देवी की उपासना करने वाले व्यक्ति ही शुद्ध एवं सात्विक भक्त होते हैं । शाक्त धर्म आज भी हिन्दुओं का एक प्रमुख धर्म है । देवी की पूजा देश के विभिन्न भागों में अति श्रद्धा एवं उल्लासपूर्वक की जाती है ।बंगाल तथा असम में इस मत का

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580|

| Volume 9, Issue 12, December 2022 |

| DOI: 10.15680/IJMRSETM.2022.0912018 |

विशेष प्रचार है । दुर्गा पूजा के अवसर पर देश भर में विविध प्रकार के आयोजन किये जाते हैं । शाक्तधर्म के सिद्धान्त त्रिपुरा रहस्य, मलिनी-विजय, महानिर्वाण, डाकार्णव, कुलार्णव आदि तन्त्र ग्रन्थों में उल्लिखित मिलते हैं ।[26]

संदर्भ

1. Deka, Phani (2007). The great Indian corridor in the east. Mittal Publications. पृ° 135. आईऍसबीऍन 9788183241793.
2. ↑ भारत की जनगणना, 2011
3. ↑ पृष्ठ 84 वॉल्यूम 11 जॉन ए. हारडन द्वारा रिलीजन ऑफ़ द वर्ल्ड
4. ↑ वाई मसीह (2000) इन: धर्म का एक तुलनात्मक अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशंस: दिल्ली, ISBN 81-208-0815-0 पृष्ठ 18. "ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जो प्रदर्शित करे कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म कभी वैदिक बलिदान, वैदिक देवताओं या जाति के अभिदत्त हैं। वे भारत के समानांतर या देशी धर्म है और वर्तमान समय के शास्त्रीय हिंदू धर्म के विकास के लिए भी अधिक योगदान दिया."
5. ↑ Chary, Manish (2009). India: Nation on the Move: An Overview of India's People, Culture, History, Economy, IT Industry, & More. iUniverse. पृ° 31. आईऍसबीऍन 9781440116353.
6. ↑ Smith, Peter (2008). An introduction to the Baha'i faith. Cambridge University Press. पृ° 94. आईऍसबीऍन 9780521862516.
7. ↑ भारत कला का संविधान 25-28 Archived 2009-02-05 at the Wayback Machine. 22 अप्रैल 2007 को पुनःप्राप्त.
8. ↑ "The Constitution (Forty-Second Amendment) Act, 1976". अभिगमन तिथि 2007-04-22.
9. ↑ द हेट्रेड्स ऑफ़ इंडिया; हिन्दू मिमोरी स्कार्ड बाई सेंच्रिज़ ऑफ़ समटाइम्स डेस्पोटिक इस्लामिक रुल न्यूयॉर्क टाइम्स, प्रकाशित: 11 दिसम्बर 1992
10. ↑ पृष्ठ 484 विश्व के मरियम-वेबस्टर का विश्वकोश वेंडी डॉनिजर, एम. वेबस्टर, मरियम-वेबस्टर द्वारा धर्म, इंक
11. ↑ पृष्ठ 169 मिर्सिया द्वारा द इंसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रीलिजन एलिएड, चार्ल्स जे. एडम्स
12. ↑ पृष्ठ 22 जोसेफ गौन्ज़ालेज़, माइकल द्वारा द कम्प्लीट इडियट गाइड टू ज्योग्राफी डी स्मिथ, थॉमस ई. शेरेर
13. ↑ Heehs 2002, पृष्ठ 39.
14. ↑ "Ancient Indians made 'rock music'". बीबीसी न्यूज़. 19 मार्च 2004. अभिगमन तिथि 2007-08-07.
15. ↑ Fowler 1997, पृष्ठ 90.
16. ↑ Oberlies 1998, पृष्ठ 155.
17. ↑ Goldman 2007, पृष्ठ 23.
18. ↑ Rinehart 2004, पृष्ठ 28.
19. ↑ Radhakrishnan & Moore 1967, पृष्ठ xviii–xxi.
20. ↑ Radhakrishnan & Moore 1967, पृष्ठ 227–249.
21. ↑ Chatterjee & Datta 1984, पृष्ठ 55.
22. ↑ Heehs 2002, पृष्ठ 106.
23. ↑ "The rise of Jainism and Buddhism". Religion and Ethics—Hinduism: Other religious influences. BBC. 26 जुलाई 2004. अभिगमन तिथि 2007-04-21.
24. ↑ "संग्रहीत प्रति". मूल से 18 दिसंबर 2010 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 18 अक्तूबर 2010.
25. ↑ अकाल उस्तत, छंद 85- 15- 1
26. ↑ अकाल उस्तत, छंद 3 से 4

INNO SPACE

SJIF Scientific Journal Impact Factor

Impact Factor: 7.580

doi crossref

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL

OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com